मैं कभी भूलूँगा नहीं

- राजाराम जैन

सन् १९४९ का पर्यूषण पर्व था । उस समय मैं बनारस हिन्दु यूनिवर्सिटी का बी.ए. कक्षा का छात्र था । क्षमावाणी के पावन दिवस पर मैं यूनिवर्सिटी-प्रांगण में स्थित उनके आवास पर उनके चरण-स्पर्श करने गया था । तब तक मेरा उनसे घना परिचय नहीं था । मैं उन्हें केवल इसलिए जानता था कि मैंने वाराणसी स्थित स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, सन्मति जैन निकेतन (नदिया) तथा पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम में उनके कई बार प्रवचन सुने थे और उनसे मैं उनके प्रति श्रद्धानवत एवं भावुक हो ऊठा था ।

उन्होंने मुझे देखकर मेरा परिचय पूछा, तो अथ से लेकर इति तक मैंने अपनी सारी व्यथा-कथा उन्हें कह सुनायी । मेरी घोर गरीबी, आर्थिक विपन्नता तथा ज्ञानार्जन के प्रति मेरा दृढ़-संकल्प देखकर वे प्रभावित हुए और उसके बाद उन्होंने मुझे जैसा स्नेह दिया, वह मेरे जीवन के लिए एक शाश्वत प्रेरणा-स्रोत बना रहा ।

उनकी प्रेरणा से अगले वर्ष मैंने उनके विभाग में बौद्ध-जैन-दर्शन की शास्त्री-कक्षा में भी प्रवेश ले लिया । उसके लिए उन्होंने मुझे छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी करा दी, जो मेरे ज्ञानार्जन में विशेष सहायक बनीं ।

सन् १९५४ में मैंने एम.ए. तथा शास्त्राचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कर ली, तब मेरी शोधोन्मुखी तथा लगनशीलता देखकर उनकी तथा उनके परम मित्र डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवाल की हार्दिक इच्छा हुई कि मैं उनके द्वारा संस्थापित प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी (वाराणसी, जो बाद में अहमदाबाद ले जाई गई) में शोधपदाधिकारी का पद स्वीकार कर लूँ । किन्तु मेरी हार्दिक इच्छा प्राध्यापकी करने की थी, अतः उक्त संस्था से न जुड़ सका और बनारस के बाहर शहडोल (मध्यप्रदेश) के गवर्नमेंट कालेज में प्राध्यापक का पद प्राप्त कर अध्यापन-कार्य करने

लगा । इस प्रकार उनकी दृष्टि से मैं ओझल जैसा हो गया ।

दीर्घान्तराल के बाद जब वे एल. डी. इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद में डायरेक्टर पद पर प्रतिष्ठित थे, तभी मेरे छोटे भाई ने जयपुर से B. I. M. S. की उपाधि प्राप्त की । गुजरात सरकार ने उसी समय जामनगर में एक आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय की स्थापना की, जो भारत में अपनी शैली का प्रथम विश्वविद्यालय था ।

मैं चाहता था कि हमारे भाई को यदि जामनगर के उक्त विश्वविद्यालय में किसी भी प्रकार प्रवेश मिल जाय, तो वह वहाँ अच्छी प्रगति कर सकेगा । अतः मैंने उसके लिए श्रद्धेय पं. मालवणियाजी से आशीर्वाद माँगा और उनकी अप्रत्याशित चमत्कारी कृपा से वह उक्त विश्वविद्यालय का रिसर्च स्कालर ही नहीं, कुछ समय बाद प्राध्यापक भी बन गया और आज वह वरिष्ठ यूनिवर्सिटी प्रोफेसर तथा रसायनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत है, साथ ही यूनिवर्सटी होस्पिटल का अधीक्षक एवं लोकप्रिय-उदार सहृदय चिकित्सक भी ।

पूज्य मालवणियाजी मधुरभाषी, सरल, उदार-हृदय एवं सज्जनोत्तम व्यक्ति थे । साधन विहीन छात्र-छात्राओं के लिए तो वे कल्पवृक्ष ही थे । जैन-बौद्ध दर्शन के शोध-क्षेत्र में तो उन्होंने मौलिक कार्य किए ही, सामाजिक नव-जागरण के क्षेत्र में भी उनके योगदानों को भुलाया नहीं जा सकेगा । प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी संघवी, प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य एवं पं. दलसुख भाई मालवणियाजी जैन दर्शन के क्षेत्र की ऐसी रत्नत्रयी थी, कि जिसका अपना विशिष्ट प्रभावी-युग था । सच्चे अर्थ में ये तीनों महारथी युग-प्रधान थे और उस कालखण्ड में उन्होंने जैन-दर्शन की ऐसी सार्वजनीन व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, जिनके कारण एशिया में प्रथम समझी जाने वाली बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जैन दर्शन का प्रधान केन्द्र बन गया । आचार्य हरिभद्रसूरि, भट्ट अकलंक, विद्यानन्दि एवं हेमचन्द्र जैसे महान आचार्यों को उन्होंने राजमहलों से लेकर झोपड़ों तक लोकप्रिय बना दिया और सामान्य जनता का भी उन्हें कण्ठहार बना दिया । राष्ट्रसन्त आचार्य श्रीविद्यानन्दजी मुनिराज उनके व्यक्तित्व एवं अगाध निर्भीक पाण्डित्य

से अत्यन्त प्रभावित थे । उनकी प्रेरणा से सन् १९७४-७५ में भ. महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण-वर्ष-समारोह में "वीर निर्वाण भारती" द्वारा बड़ौत में उन्हें पुरस्कृत सम्मानित किया गया था ।

सन् १९७४ में आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस का २७ वाँ अधिवेशन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (हरयाणा) में आयोजित था । उसमें श्रद्धेय गुरुवर पं. मालवणियाजी, प्रो. डॉ. ए. एन. उपाध्ये, अपभ्रंश के महापण्डित प्रो. डॉ. भायाणीजी तथा मित्रवर डॉ. सागरमलजी, डॉ. के. आर. चन्द्रा, प्रो. शरद शाहा आदि भी उपस्थित हुए थे । उस समय मैं अपभ्रंश की कुछ दुर्लभ पाण्डुलिपियों का अध्ययन कर रहा था और एक सचित्र अप्रकाशित पाण्डुलिपि पर ही मैंने निबन्ध-वाचन भी किया था । पता नहीं उस निबन्ध में ऐसा क्या प्रभावी-तथ्य था कि पं. मालवणियाजी एवं उपाध्येजीने मेरी प्रशंसा की और उसका सुफल यह मिला कि उनकी प्रेरणा से ओरिअण्टल कान्फ्रेंस के प्राकृत एवं जैन-विद्या विभाग के आगामी २८वें अधिवेशन के लिए अध्यक्ष पद हेतु चुनाव में मेरे परम मित्र भाई डॉ. के. आर. चन्द्रा ने मेरा नाम प्रस्तावित किया, भाई शरदचन्द्र मोतीचन्द्र शाहा (पूना) ने उसका समर्थन किया और आगामी अधिवेशन (कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ में आयोजित) के लिए मैं अध्यक्ष निर्वाचित हो गया । मुझे बाद में चन्द्राजी ने बतलाया कि पं. मालवणियाजी एवं डॉ. उपाध्ये आदि का विचार था कि अभी तक वृद्ध लोक ही कान्फ्रेंस के प्राकृत एवं जैन-विद्या विभाग की अध्यक्षता करते आये थे । अतः अब किसी ऐसे युवक को अध्यक्ष बनाया जाय जो प्राकृत के क्षेत्र में लगन पूर्वक कार्य कर रहा हो और पाण्डुलिपियों के सम्पादन, संशोधन जैसे जैन-विद्या-विकास के कार्य में भी दत्तचित्त हो । अतः उन्हीं की प्रेरणा से मेरा नाम प्रस्तावित किया गया और उनके आशीर्वादों से मैं अध्यक्ष भी निर्वाचित हो गया ।

परम पूज्य उपाध्येजी तो कर्नाटक विश्वविद्यालय में आयोजित उस अधिवेशन में असामयिक दुःखद निधन के कारण उपस्थित न हो सके, किन्तु पूज्य पं. मालवणियाजी स्वयं उपस्थित हुए थे और उनकी उपस्थिति

से मैंने विशेष गौरव का अनुभव किया था । उसी समय मुझे श्रद्धेय डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवाल का कथन याद आ गया, जो वे निरन्तर कहा करते थे कि "सच्चा गुरु वही है, जो अपने शिष्य की प्रगति से प्रमुदित रहता हो ।"

परम पूज्य संघवी जी, पूज्य पं. महेन्द्रकुमार एवं पूज्य मालवणिया रूप रत्नत्रयी अथवा पण्डितत्रयी में से प्रथम दो के अन्तर्धान हो जाने पर भी श्रद्धेय पूज्य मालवणियाजी के दर्शन कर सान्त्वना मिलती थी और उनके पूर्व-युग की सारस्वत-झाँकियों का अहसास होता रहता था, किन्तु अब उनके भी तिरोहित हो जाने से वह जगत सूना-सूना हो गया है । वस्तुतः यह एक ऐसी अपूरणीय क्षति हुई है, जिनकी पूर्ति आगामी सदियों में भी पूर्ण न हो सकेगी ।

पूज्य पं.जी मेरे लिए धर्म पिता थे, मेरे महान हितैषी एवं संरक्षक थे । अतः उनके देहावसान से मेरी व्यक्तिगत क्षति हुई है । किन्तु विधि का विधान विचित्र है, वह अटल है । अतः यथार्थता को स्वीकार किए बिना कोई गति नहीं । उनके भावुक बना देने वाले स्मृति-पुंजों के लिए मेरे शतशः वन्दन प्रणाम ।

●